THE TIMES OF INDIA

Date: 26-09-17

Victory, warning

Germany's mandate for Angela Merkel represents both continuity and challenge

TOI Editorials

The European Union can heave a sigh of relief that Angela Merkel's Christian Democratic Union has emerged as the single largest party in German elections. But the task of cobbling together an alliance remains, and the challenge posed to the liberal Western order from far-right tendencies is far from receding. Merkel's steadying influence on the EU from one crisis to the next marked her out as a leader who wouldn't give up on the waning appeal of multilateralism. From bailing out Greece during the European debt crisis, admitting nearly one million Syrian refugees that took the pressure off other EU countries, and then steadying EU after Brexit, Merkel can rightfully stake claim as the preeminent Western leader of our times – given that the US and UK appear to have turned their backs on globalisation and no longer seem to care for a rules-based international liberal order.

But Germany's path towards more purposeful interventions will be hindered by the rise of far-right tendencies characterised by nationalism and anti-immigrant sentiment on home soil. Their manifestation in a country that successfully effaced its Nazi past makes it incumbent upon the two main parties, Christian Democrats (CDU) and Social Democrats (SPD), to energetically tackle the reasons for their diminished vote shares. Already, SPD has decided it will not be part of another CDU-led government.While this will complicate Merkel's task of finding new alliance partners it will ensure that the far-right Alternative for Germany (AfD) does not emerge as the primary opposition party. The CDU-SPD alliance in the previous government created a vacuum in the opposition on key issues like refugee policy, that allowed AfD to grab political space on the right.

Central to Germany's continued prosperity is Eurozone stability which ensures a steady market for its exports. In French President Emmanuel Macron, Germany has an able ally who wishes to push key reforms that strongly interlink EU economies. The likes of Russian President Vladimir Putin and nationalists like France's Marine Le Pen – even perhaps US President Donald Trump – would like to see them fail. Merkel personifies steadiness, continuity and cooperation when Trump and UK Prime Minister

Theresa May lead their countries towards more isolationist and protectionist positions and President Xi Jinping selectively deifies global trade on China's terms. But Merkel faces challenges at home, where her first task will be to craft a credible coalition government.

THE ECONOMIC TIMES

Date: 26-09-17

PM's pro-poor pitch on power holds promise

ET Editorials

Power flows from the barrel of the gun, said Mao Zedong. Prime Minister Narendra Modi would appear to believe that political power for a second term of his government would flow from the power grid. At the extended meeting of the BJP National Executive, Modi outlined a vision building a power sector that would light every lamp in every home in every hamlet, and fire up every hearth as well, and the country would turn power surplus, preferably from renewable sources, the sun in particular. The speech did not hold out any great promise of new investment that would reverse economic deceleration but did underline the PM's commitment to the poor of the country and his efforts to alleviate their distress in sector after sector, focusing, in particular, on energy.

The PM's grasp of the energy sector and of detail in every sub-sector is commendable. He dwelt not only on new energy-saving products and technologies, and on the new thrust on renewable energy, whose costs are coming down virtually every passing day, but also on the macroeconomic benefits of slashing expensive oil imports, both through substitution of hydrocarbon energy by renewable sources and by means of saving energy. While he spoke of the need to curb greenhouse gas emissions, he acknowledged the reality that India would continue to use hydrocarbons and coal as major energy sources. But he committed to make these sectors work more efficiently and transparently, as via coal auctions. He outlined the upgradation undertaken in power transmission, although India is yet to adopt the ultra-high-voltage transmission technology that allows China to generate power efficiently and far removed from its population centres.It would have been appropriate if the PM had also used the occasion to call upon the people to pay for the power they consume and told politicians to stop patronising power theft. For, it is this change in the political culture that the power sector needs far more than any financial reengineering of bankrupt distribution utilities represented by the Ujwal Discom Assurance Yojana (UDAY).

दैनिक भास्कर

Date: 26-09-17

गलत खान-पान से देश 'हिडन हंगर' की चपेट में

शहरी लोगों के आहार में भी जीवन के लिए जरूरी तत्वों की कमी से कई नई बीमारियों का जोखिम बढ़ा।

डॉ. अनिल जोश

'शरीर माध्यम खलु धर्म साधनम' शास्त्रों में कही यह सूक्ति नए जमाने की जीवनशैली में फिट नहीं बैठती। इसमें कहा गया है कि हर तरह के कार्यों के लिए शरीर ही माध्यम है, इसलिए इसे सुरक्षित व स्वस्थ रखना अनिवार्य है। नई जीवनशैली और उसके खान-पान के तरीके चिंताजनक भविष्य की तरफ इशारा करते हैं।असल में हमारी पूरी शिक्षा में शरीर, खान-पान, भोजन, स्वास्थ्य के बारें में सीधे कोई बात नहीं बताई जाती। अगर प्राथमिक शिक्षा में ही पोष्टिक आहार से अच्छी तरह परिचित करा दिया जाता तो आज हालात कुछ और होते। शहरों में हमेशा से शिक्षा का बेहतर प्रबंध है लेकिन, इसमें खान-पान व शरीर के रिश्ते की जानकारी नहीं दी जाती। यही वजह है कि पिछले दिनों इंडियन मार्केट रिसर्च ब्यूरो द्वारा किए सर्वे से चौंकाने वाली बात पता लगी कि देश के 73 प्रतिशत शहरी लोगों के भोजन में प्रोटीन की कमी है। 93 प्रतिशत लोगों को भोजन में प्रोटीन की मात्रा का पता नहीं है और न यह पता है कि प्रोटीन की कमी से क्या-क्या हो सकता है। 70 प्रतिशत युगल और 62 प्रतिशत गर्भवती महिलाओं में प्रोटीन की कमी है। 44 प्रतिशत बच्चों में प्रोटीन की कमी दिखी। अगर पोषक आहार को लेकर शहरों की यह हालत है तो फिर गांवों के हालात की कल्पना की जा सकती है। भोजन के प्रति हमारी यह अवहेलना हमें भारी पड़ने वाली है। गत 2-3 दशकों में हमारी भोजनशैली में बड़ा परिवर्तन आया है। युवा पीढ़ी में जब से फास्ट फूड का चलन बढ़ा है, देशी रेसिपी पिछड़ेपन की निशानी हो गई है। फिर शहरों की व्यस्त जीवनशैली को यह सूट भी करता है।

पिछलें 50 वर्षों में हमने एक और बड़ा संकट खड़ा कर लिया है। हमने जिस तरह उत्पादन बढ़ाने की कोशिश की उससे हमारी खाद्य सामग्री बहुत महत्वपूर्ण तत्वों से वंचित हो गई है। अत्यधिक रसायनों के प्रयोग व कीटनाशकों ने मिट्टी की गुणवत्ता में बड़ा अंतर पैदा कर दिया है। आज बहुत से सूक्ष्म व ट्रैस तत्व हमारे भोजन से गायब हैं जैसे लौह, मैगनीज़, जिंक, कॉपर, आयोडिन, पोटेशियम, सोडियम, फॉलिक एसिड आदि। इनकी कमी को 'हिडन हंगर' का नाम दिया गया है। ये बहुत ही कम मात्रा में पाए जाते हैं पर शरीर की कई जैव-रासायनिक प्रक्रियाओं के लिए अत्यावश्यक हैं। ये तत्व दिमाग, हड्डियों व हृदय के लिए आवश्यक होते हैं। ये हमारी प्रतिरोधक क्षमता, हार्मोन व्यवस्था व अन्य क्रियाअोंं के लिए महत्वपूर्ण हैं। देश में प्रतिदिन 600 बच्चे इस तरह के कुपोषण से मरते है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के सर्वे के अनुसार भारत सहित दुनिया में कैंसर तेजी से फैल रहा है। यह खेती में रसायनों के अत्यधिक उपयोग का

नतीजा है। इसी तरह दुनिया में लौह तत्व की कमी वाले लोगों की संख्या 200 करोड़ है। इससे खून की कमी होती है। आयोडिन की कमी भी 150 करोड़ लोगों में पाई गई है। इससे टॉन्सिल, गॉइटर व मानसिक रोग होते हैं। ऐसे में अन्य विकास कार्यों का दम हम कैसे भर सकते है, जो सुविधा से ज्यादा कुछ नहीं है।सवाल उठता है कि सेहत से जुड़ी हर तरह की समस्या के लिए जिम्मेदार 'हिंडन हंगर' से कैसे निपटें? कुछ बातें समझने की जरूरत है। एक, हम जहां रहते है उस जलवायु के अनुकूल हमारे भोजन की व्यवस्था प्रकृति ने की है। दो, वहां जो पैदा होता है, वही हमारे शरीर की फिजियोलाॅजी के लिए बेहतर है। हमारा शरीर जहां पैदा हुआ वहां की मिट्टी व जलवायु में गहरा तालमेल होता है, जिसका टूटना हमारे शरीर के लिए घातक होता है। हमने अपने परम्परागत भोजन को त्यागकर बड़ा जोखिम ले लिया है, इसलिए शरीर की आवश्यकतानुसार हमें पर्याप्त तत्व नहीं मिल रहे हैं और कई नई बीमारियां हमें परेशान कर रही हैं।

अब मोटे अनाज को ही लें यह प्रोटीन, कॉर्बोहाइड्रेट और मिनरल के बड़े स्रोत हैं। भारत में मुख्यत: ज्वार, बाजरा, रागी, कोदो, फॉक्स टेल मिलिट आदि उगाए जाते हैं। राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा के लिए क्षेत्र के हिसाब से मोटे अनाज के लिए विशेष पहल क्यों नहीं की जानी चाहिए। सिर्फ इसलिए कि कुछ देशों के किसान खास तरह के अनाजों की फसल लेते हैं, उनके यहां का अतिरिक्त अनाज अन्य देशों के खाद्य सुरक्षा उपायों का हिस्सा बना दिया जाता है। हिमालय एनवायर्नमेंटल स्टडीज एवं कंजरर्वेशन ऑर्गनाइजेशन (हेस्को) में हमने इकोलॉजिकल फूड इनिशिएटिव मिशन फॉर न्यूट्रिशनल एवं इकोलॉजिकरल सिक्योरिटी के तहत उत्तराखंड के चमोली रुद्रप्रयाग और टेहरी के आठ गांवों में 1,500 परिवारों को मोटे अनाज की खेती के प्रेरित किया है। ये लोग सात प्रजातियों की 40 किस्मों का मोटा अनाज उगाते हैं। हमारे लिए ये कितने महत्वपूर्ण है इसकी बानगी फिंगर मिलिट (रागी) से मिलती है। देश में गेंहू-चावल के बाद यह मुख्य अनाज है लेकिन, इसकी उपेक्षा की गई है। यह हर किस्म की जमीन में उगाया जा सकता है। इसमें इतना केल्शियम होता है कि इसे गरीब आदमी का दूध कहा जाता है। प्रोटीन और कार्बोहाइड्रेट के साथ इसमें फास्फोरस भी भरपूर होता है।खाद्य सुरक्षा के हिसाब से फलियां भी बहुत महत्वपूर्ण हैं, जिन्हें आमतौर पर दालों के रूप में लिया जाता है। दुर्भाग्य से यह ग्रामीण भारत के भोजन से बाहर होती जा रही है। अंतरराष्ट्रीय मानकों से व्यक्ति के प्रतिदिन के आहार में यह 55 ग्राम होनी चाहिए पर यह 30 ग्राम या उससे भी नीचे चली गई है। चार दशक पहले यह भारत में 67 ग्राम हुआ करती थी। इसके अभाव में शारीरिक विकास में कई विकृतियां दिखाई दे रही हैं। इसे असिंचित या अल्पसिंचित जमीन पर उगाया जा सकता है। खेती की कोई सघन प्रणाली जरूरी नहीं होती। चूंकि इसकी जड़ें ही एक खास तरह के बैक्टीरिया की मौजूदगी के कारण मिट्टी को उर्वर बनाती हैं तो उर्वरकों की इन्हें बहुत जरूरत नहीं होतीं। इनका जेनेटिक मेकअप ऐसा है कि ये कई कीटों और रोगों का प्राकृतिक रूप से सामना कर लेती हैं। प्रोटीन से भरपूर होने के कारण वे ग्रामीण समुदाय के लिए आदर्श आहार हैं, जिनके भोजन में पोषक तत्वों का अभाव होता है।सुविधाओं के विकास की धुन में यदि हमने पोषक आहार को नज़रअंदाज किया तो भावी मंदबुद्धि व बीमार समाज मौजूदा पीढ़ी को कोसेगा, जिसने जीवन से ज्यादा सुविधाओं के बारे में सोचकर अपनी मूढ़ता का परिचय दिया।

Live हिन्दुस्तान.com

Date: 25-09-17

हमारी संस्कृति का निजता से नाता

ओसामा मंजर

निजता कोई गोपनीयता बरतने का तरीका नहीं है। इसके उलट इसे 'अकेले रहने और दूसरे लोगों द्वारा ताड़ने या परेशान न किए जाने की अवस्था' के रूप में परिभाषित किया गया है या फिर इसे 'आम लोगों की निगाहों से दूर रहने की अवस्था' माना गया है। मगर भारत के सांस्कृतिक व व्यावहारिक संदर्भों में निजता के मायने क्या हैं? जवाब है, कोई खास नहीं। यह समझने के लिए कि भारत में निजता का कोई खास मतलब नहीं है, हमें देश की जनसांख्यिकी पर गौर करना होगा। ऐतिहासिक रूप से भारत एक ऐसा देश रहा है, जो विविधता को समेटे हुए है। यह विविधता इसकी भौगोलिक तस्वीर, भू-आकृति और राज्यों की सीमाओं तक सिमटी हुई नहीं है, बल्कि यह इसकी संस्कृति, परंपरा, खान-पान की आदत, वेश-भूषा, भाषा, बोली, लिपी, व्यवहार, धर्म और जाति तक में फैली हुई है। कहा जाता है कि 'हर दो मील पर यहां पानी बदलता है और हर चार मील पर भाषा बदलती है'।2011 की जनगणना के अनुसार, भारत की कुल 1.3 अरब आबादी में 68.84 फीसदी लोग गांवों में रहते हैं। जनगणना यह भी बताती है कि कुल ग्रामीण आबादी में 67.77 फीसदी हिस्सा साक्षर है; बाकी सब अनपढ़ और निरक्षर हैं, इसलिए वे देश के मौखिक संवाद वाले समाज का निर्माण करते हैं। शहरी और ग्रामीण, दोनों आबादी को मिला दें, तो आधिकारिक आंकड़ों के अनुसार देश की 27.01 फीसदी आबादी निरक्षर है। हालांकि जिन्हें देश ने अनपढ़ या निरक्षर माना है, उनमें से ज्यादातर आर्थिक रूप से कमजोर हैं, ग्रामीण हिस्सों या आदिवासी इलाकों में रह रहे हैं या वे पिछडे जिलों से ताल्लुक रखते हैं। भारत के संदर्भ में निजता को समझने के लिए कुछ तथ्यों पर गौर करना उचित होगा। पिछले साल अक्तूबर तक भारत में मोबाइल फोन के ग्राहकों की संख्या 1.1 अरब को पार कर गई थी। देश में मोबाइल की इतनी गहरी पहुंच होने की एक वजह यह भी है कि इससे लोग तुरंत बात कर लेते हैं और इसका इस्तेमाल वाचिक संवाद स्थापित करने में होता है। यहां लोगों को लिखकर बातें करने या इस काम के लिए किसी की मदद की जरूरत नहीं होती। भारत में टीवी और रेडियो की लोकप्रियता की वजह भी यही है।

ब्रॉडकास्ट इंडिया सर्वे के मुताबिक, ग्रामीण भारत में कम आमदनी के बावजूद 17 फीसदी से अधिक घरों में टीवी है, जबकि एजेड रिसर्च का अध्ययन बताता है कि एफएम सुनने वाले लोगों में 76 फीसदी श्रोता इसके लिए मोबाइल फोन इस्तेमाल करते हैंं। जहां बातचीत व सूचनाओं का प्रसार अमूमन संचार के मौखिक तरीकों से होता हो, वहां सूचना की सुरक्षा का विचार या निजता की गुजाइंश बचती ही काफी कम है। ध्यान यह भी रखना चाहिए कि ज्ञान की कई बातों को भले ही देश के स्कॉलर, रिसर्चर और लेखकों ने ऑनलाइन या ऑफलाइन दस्तावेजों पर उकेर दिया है, बावजूद इसके अब भी काफी कुछ का दस्तावेजीकरण या उनको खंगाला जाना बाकी है, क्योंकि जिनके पास यह ज्ञान है, वे निरक्षर हैं और पारंपरिक तरीकों से उसे कागजों पर उतारना उन्हें नहीं आता। सांस्कृतिक तौर पर भारत एक ऐसा देश है, जहां कई जानकारी एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक मौखिक रूप में पहुंचती रही है। इस सच का दायरा हम स्वास्थ्य, चिकित्सा, वास्तुकला, संस्कृति, शिल्प, कला, लोक कथा, लोक संगीत, भाषा आदि में स्पष्ट तौर पर देख सकते हैं। साफ है कि भारत ने न संचार को और न ही किसी सूचना को 'निजी' समझा है। यहां व्यक्तिगत जीवन की समझ भी काफी कम है। किसी के भी जीवन का लगभग हर हिस्सा उसके परिवार, समुदाय, गांव या समाज के लिए खुली किताब की तरह होता है। यहां व्यक्तिगत इच्छाओं व स्वामित्व-अधिकार पर समाजों की प्रथाओं और जारी किए जाने वाले फरमानों की बंदिशें भी होती हैं। मसलन, यहां किसी लड़की के पास उसका व्यक्तिगत मोबाइल फोन तो हो सकता है, पर उसका इस्तेमाल वह कैसे करेगी, यह तय करने का अधिकार उसके परिवार या समाज को होता है।

इसके अलावा, भारतीयों में दूसरों के जीवन में दखल देने की भी आदत होती है, और विडंबना देखिए कि हम दूसरे की निजी व व्यक्तिगत जानकारी हासिल करने की अपनी इस मंशा को 'दखल' या 'निजता का हनन' नहीं मानते। यह दखल यदि आपको पर्याप्त नहीं लगे, तो अपने यहां की शादी देख लीजिए। देश में अब भी 'अरैन्ज्ड मैरिज' यानी माता-पिता की रजामंदी से शादी करना आम है, जो पश्चिम के मिजाज से बिल्कुल अलग व्यवस्था मानी जाती है। मगर हमारे समाज के लोग यह जानने को हमेशा उत्सुक

रहते हैं कि विवाह में कितना खर्च किया गया, नवविवाहित जोड़ा बच्चे की योजना कब बना रहा है? अगर बच्चे की नहीं सोच रहा, तो क्यों? यहां बच्चे को यह नहीं सिखाया जाता कि उन्हें बेडरूम के दरवाजे बंद रखने चाहिए; यहां तक कि जब वे सोने जाते हैं, तब भी नहीं। आज भी ग्रामीण और शहरी भारत के कई घरों में दरवाजे को बंद करना- जबकि आप कपड़े न बदल रहे हों- कुछ छिपाने का काम माना जाता है, आपकी निजता नहीं।लोगों से जब यह पूछा जाता है कि क्या वे अपनी निजता का संरक्षण चाहेंगे, यहां तक कि अपने मोबाइल फोन के डाटा की निजता चाहेंगे, तो वे पलटकर अमूमन यही जवाब देते हैं कि 'हमारे पास छिपाने को आखिर है क्या?' शहरी जीवन में भी यह आम है कि ग्राहक जोर-जोर से अपने डेबिट कार्ड का पिन वेटर को बताते हैं। दिलचस्प है कि कई भारतीय इसे सही मानते हैं। वे कहते हैं कि उनके बैंक खाते में पैसे ही कितने होते हैं? यानी, यहां वे निजता को लग्जरी समझ बैठने की भूल कर बैठते हैं और सुरक्षा को पैसे से जोड़ देते हैं। सच यही है कि हमारा समाज डिजिटल क्रांति और निजता के अधिकार के दोराहे पर खड़ा है। जहां देश डिजिटल व्यवस्था की ओर बढ़ रहा है, वहीं भारतीय जनजीवन में रची-बसी संस्कृति निजता को एक ऐसे अधिकार के रूप में लागू करने और समझने की राह में चुनौतियां पैदा कर रही है, जिसे हमारे जीवन व स्वतंत्रता का स्वाभाविक हिस्सा होना चाहिए। भारतीयों को यह समझने की जरूरत है कि निजता वह नहीं है, जो आप दूसरों से छिपाना चाहते हैं, बल्कि वह है, जिसे आप मानते हैं कि किसी दूसरे को देखने की जरूरत नहीं है।

The Indian EXPRESS
JOURNALISM OF COURAGE

Date: 25-09-17

Generalist vs specialist

A nuanced process of active but careful cadre management should inform lateral entry into IAS

Gulzar Natarajan , Duvvuri Subbarao

In an earlier article ('The case for lateral entry', IE, August 9), we made a case for an institutionalised system of lateral entry of mid-career professionals into the IAS. We argued that lateral entrants will not only bring in much-needed external expertise into the government but will also challenge the regular recruit IAS into continuous self-improvement. But such self-improvement will not happen automatically; the government will have to institute an incentive structure, devote greater attention to career management and provide opportunities for specialisation. How the government should approach this task is the thrust of this article.Arguably the biggest question confronting the IAS is its lack of specialisation. The IAS was modelled on the colonial era Indian Civil Service as a generalist service to deliver the core functions of the state — collect taxes and maintain law and order. The challenge of development in a large, populous and impoverished country was probably not on the radar screen when the IAS was designed. But it soon became apparent that this development task would become central to public administration, especially at the state level. The IAS adapted to these changing dynamics by retooling itself as a "development agent", and on the whole acquitted itself quite creditably.

As economic reforms deepened and the state started yielding to the market, the nature of administration changed, demanding domain knowledge, especially at the policy level. This raised questions about the role and relevance of the IAS. Two views emerged.The first is the argument that the best leadership is provided by generalists who have a breadth of understanding and experience. Specialists, no matter how competent, tend to have a tunnel vision and are not equipped to take a broader view. Sure, domain knowledge has to feed into policy-making, but that can be accomplished by domain experts advising the generalist leader in decision-making. In this worldview, a good IAS officer can head the Department of Agriculture as competently as she would the Department of Shipping.The opposing view is that the IAS, as generalists, tend to over-weigh their experience of the process and form over understanding of policy content. Only someone who has learnt the subject from the trenches, as it were, can provide competent leadership in a functional area. Having the IAS head specialised areas is an inefficient arrangement.This debate has frowned upon moderation. But there is no need to look for binary solutions. The complex and interconnected nature of policy-making demands that specialist expertise has to go with generalist experience. Notably, the Constitution Review Commission 2002 suggested the "need to specialise some of the generalists and generalise some of the specialists". That seems to be a wise dictum for the way forward.That raises the challenge of managing specialisation. When does an IAS officer start to specialise? How will the system be operationalised?The private sector's example is instructive. There, young professionals are typically recruited in specialised areas and they rise to generalist leadership positions negotiating their way up the hierarchy. What we have, or should have, in the public sector is in fact its reverse. Young recruits join the IAS as generalists, acquire breadth and then go on to acquiring depth.

The first decade of an IAS' career is typically spent in field postings with responsibility for policy execution which hones her administrative and people management skills, apart from imparting invaluable understanding of ground realities. From there an IAS graduates to policy formulating positions, at the centre and state levels. This transition provides the ideal marker for beginning to specialise — combining the soft skills they have learnt with the hard skills of a specialised domain.Managing specialisation can be a complex challenge. How much specialisation should there be? How should officers be allocated among the specialisations? What should be the weightages for expressed preferences and revealed competencies? Once allocated a specialisation, how should an officer's career be managed?A starting point can be to categorise ministries broadly into three groups — welfare ministries, regulatory ministries and economic ministries since experience suggests that each of these categories demands broadly similar behavioural attributes and aptitudes. A couple of principles should inform the process.First, allocating officers across specialisations cannot, and should not, be reduced to a formula. It is best to work the system flexibly, allowing specialisation to emerge gradually through a process of deliberate iteration at the mid-career level. This will facilitate officers in specialising as they move up the hierarchy based on their revealed aptitude and performance record. Because the system needs to be flexible, it places the onus on the government to make it predictable and transparent.Second, specialisation need not be mandatory. Some IAS officers may prefer to remain generalists. Indeed, the system too is always in need of some generalists. One of the tasks of cadre management will indeed be to match the supply and demand across specialisations and generalists.

Once they are allocated specialist positions, officers should be afforded opportunities to deepen their domain knowledge through study and training. Also, since IAS officers are recruited at a young age, they hardly ever experience the government from the outside. They should, therefore, be allowed, even encouraged, to work outside the government, preferably in a non-governmental organisation for a few years, irrespective of their area of specialisation. This is bound to make them more useful and relevant civil servants.This effort to optimise generalist experience with specialist domain expertise should apply to lateral entrants as well. Just as regular recruits are required to specialise, lateral entrants should be

required to "generalise" through field postings so that they have an opportunity to dirty their hands.Giving the IAS an optimal blend of breadth and depth is a complex challenge. The way forward lies in eschewing binary solutions and embracing a nuanced, iterative process of active but careful cadre management.